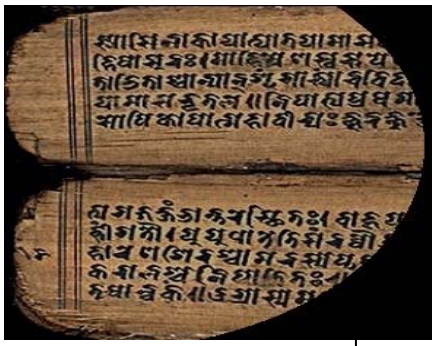

International Journal of Sanskrit Research
इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ संस्कृत रिसर्च

ISSN Number: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2)
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com

डा. देवेश कुमार मिश्र
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सम्पादक की लेखनी से.....

वैदिक वाङ्मय से लेकर आज तक की संस्कृत चिन्तन परम्परा में किसी भी पक्ष के लिए कोई न्यूनत्व नहीं दिखायी पड़ता। ज्ञान / विज्ञान / तप / स्वाध्याय के सूक्ष्म परीक्षण वेदों में निगदित हैं। कोई कितना भी कहे, वेदों में देवस्तवन है और कुछ नहीं। यह एक भ्रान्त धारणा और आधारहीन चिन्तन का परिणाम हो सकता है। वैदिक ज्ञानराशि तो ऋषियों का ऑखो देखा हाल है। असत्य और अप्रयोज्य होने का सवाल ही नहीं। परवर्ती मनीषा को वेदों ने बहुत कुछ दिया - सर्वज्ञानमयो हि सरू। वेदोऽखिलो धर्ममूलम् आदि।

घटित का दर्शन कर उसकी अभिव्यक्ति करना ऋषियों का प्रधान कार्य रहा है, वेद ऐसी ही अभिव्यक्ति हैं। यद्यपि मीमांसा में वेदों की अपौरूषेयता सिद्ध है, तथापि मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि होने के कारण पूर्णतरू अपौरूषेयता नहीं ही घोषित की जा सकती। वैदिक ज्ञान को सैद्धान्तिक और सरलीकृत बनाने के लिए उपनिषदों में प्रयुक्त उपदेशात्मकता नें परवर्ती सभी पक्षों को लाभान्वित ही किया। एक अपूर्व बात और है कि इनके अलावा भारतीय मनीषा के आरम्भिक ज्ञान स्रोत प्रायरू शून्य ही हैं। स्मृतियों ने सामाजिक संतुलन / सौहार्द व व्यावहारिक नियमन / आचार / विचार, निषेध आदि पर प्रकाश डालकर समाज को विविधता में भी एकता स्थापित करने का ज्ञान कराया। वैदिक व लौकिक संस्कृत साहित्य के सन्धिकाल पर विराजमान होकर जय, भारत, महाभारत नामक तीन श्रेणियों में सम्बलित उस शतसाहस्री संहिता ने सामाजिक जीवन में शान्ति स्थापना का परम प्रयास किया। यही उस समय तक के वर्णनों / उपदेशों की काष्ठा थी। इन सभी प्रणयनों में केवल सामाजिक या वैयक्तिक लाभ नहीं हैं अपितु इनमें समसामयिक के परीक्षण की क्षमता भी है, विभिन्न ज्ञान दृ विज्ञान भी है। एक मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनाने की क्षमता भी है। लौकिक अलौकिक सभी समृद्धियों की ओर ले जाने की पात्रता भी है। हॉ एक बात अवश्य है कि तकनीकी युग में मनुष्य केवल सुविधा की खोज कर रहा है।

महाकाव्य लिखे गये हैं। उन पर कहीं कहीं शोधकार्य भी चल रहे हैं। इन कवि / मनीषियों / लेखकों ने समाज व राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं पर अपनी स्पष्ट दृष्टि भी रखा है, सावधान भी किया है । भारतीयता से प्रेम का आह्वान भी किया है । सामाजिक दोषों के निराकरण की बात भी की है, किन्तु अद्यावधि इनके पाठकों की भी कमी है। राष्ट्रीय स्तर पर इनकी चर्चा भी नहीं है । संस्कृत शिक्षण में न शासन की अभिरूचि है न समाज की। एक भ्रम का अभिशाप भी प्रचारित है कि संस्कृत में रोजगार की सम्भवनाएँ शून्य हैं। वस्तुतरू यह सोच केवल संकुचन और आत्मकेन्द्रण को बढ़ावा देती है। व्यक्ति को सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों से विमुख होकर केवल उदरपोषण सिखाती है ।

संस्कृत वाङ्मय में भूमि, जल, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि के आदर व संरक्षण की बात बहुधा कही गयी है। यही नहीं बल्कि इन सबको आचार / व्यवहार / दिनचर्या / यज्ञ आदि से संपृक्त करके मनुष्य मात्र के अन्तर्मन में इनकी प्रतिष्ठा करने का प्रयास भी किया गया। परिणत बुद्धि वाला भी जिस वेदान्त का पार नहीं पा सकता उसे कठिनाई होती है, पुरूषार्थो की सिद्धि में। यह दुष्कर कार्य हमारा काव्यानन्द अतीव सहज कर देता है । काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। काव्यास्वाद ब्रह्मास्वाद की पूर्ति भी करता है। काव्य के स्वरूप निरूपण में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं।

'चतुर्वर्ग फलप्राप्तिरू सुखादल्पधियामपि । काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते ।।''

वेद से लेकर अधुनातम काव्य परम्परा तक का एक ही लक्ष्य है। प्राणिमात्र के दुख का शमन। सामाजिक दोषों का निराकरण / प्रकृति के प्रति सौहार्द / अहिंसा की वृत्ति की स्थापना आदित्यादि। सभी शास्त्र वैदिक गोपनीय सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं। शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष ये सभी अज्ञानान्धकार को ही दूर करने का प्रयास करते हैं। ज्योतिष शास्त्र वेद का निर्मल नेत्र है, अकल्मष है। इसके प्रत्यक्ष होने में कोई सन्देह नहीं। प्रस्तुत अंक में संस्कृत वाङ्मय के ही विविध पक्षों से सुधीजनों द्वारा लिखित लेखों का प्रकाशन किया गया है। विश्वास योग्य है .....ग्राहकता सिद्ध होगी ।

डॉ. देवेश कुमार मिश्र
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी